प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक :
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

पुनरावृत्ति सन् २००१

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

विधेयात्मक चिंतन की फलदायी परिणतियाँ

जीवन की अन्यान्य बातों की अपेक्षा सोचने की प्रक्रिया पर सामान्यतः कम ध्यान दिया गया है, जबकि मानवी सफलताओं-असफलताओं में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। विचारणा की शुरुआत मान्यताओं अथवा धारणा से होती है, जिन्हें या तो मनुष्य स्वयं बनाता है अथवा किन्हीं दूसरे से ग्रहण करता है या वे पढ़ने, सुनने और अन्यान्य अनुभवों के आधार पर बनती हैं। अपनी अभिरुचि के अनुरूप विचारों को मानव मस्तिष्क में प्रविष्ट होने देता है जबकि जिन्हें पसंद नहीं करता उन्हें निरस्त भी कर सकता है। जिन विचारों का वह चयन करता है उन्हीं के अनुरूप चिंतन की प्रक्रिया भी चलती है। चयन किए गए विचारों के अनुरूप ही दृष्टिकोण का विकास होता है। जो विश्वास को जन्म देता है, वह परिपक्व होकर पूर्वधारणा बन जाता है। व्यक्तियों की प्रकृति एवं अभिरुचि की भिन्नता के कारण मनुष्य-मनुष्य के विश्वासों, मान्यताओं एवं धारणाओं में भारी अंतर पाया जाता है।

चिंतन पद्धति में अर्जित की गई भली-बुरी आदतों की भी भूमिका होती है। स्वभाव-चिंतन को अपने ढर्रे में घुमा भर देने में समर्थ हो जाता है। स्वस्थ और उपयोगी चिंतन के लिए उस स्वभावगत ढर्रे को भी तोड़ना आवश्यक है जो मानवी गरिमा के प्रतिकूल है अथवा आत्मविकास में बाधक है।

प्रायः अधिकांश व्यक्तियों का ऐसा विश्वास है कि विशिष्ट परिस्थिति में मन द्वारा विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करना मानवी प्रकृति का स्वभाव है, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। अभ्यास द्वारा उस ढर्रे को तोड़ना हर किसी के लिए संभव है। परिस्थिति विशेष में लोग प्रायः जिस ढंग से सोचते एवं दृष्टिकोण अपनाते हैं, उससे भिन्न स्तर का चिंतन करने के लिए भी अपने मन को अभ्यस्त किया जा सकता है। मानसिक विकास के लिए, अभीष्ट दिशा में सोचने के लिए अपनी प्रकृति को मोड़ा भी जा सकता है।

मन विभिन्न प्रकार के विचारों को ग्रहण करता है, पर जिनमें उसकी अभिरुचि रहती है, चयन उन्हीं का करता है। यह रुचि पूर्वानुभवों के आधार पर बनी हो सकती है, प्रयत्नपूर्वक नई अभिरुचियाँ भी पैदा की जा सकती हैं।

प्राय: मन एक विशेष प्रकार की ढर्रे वाली प्रतिक्रियाएँ मात्र दरसाता है, पर इच्छित दिशा में उसे कार्य करने के लिए नियंत्रित और विवश भी किया जा सकता है। बंदरों की तरह उछल-कूद मचाना उसका स्वभाव है। एक दिशा अथवा विचार विशेष पर वह एकाग्र नहीं होना चाहता। नवीन विचारों की ओर आकर्षित तो होता है, पर उपयोगी होते हुए भी उन पर टिका नहीं रह पाता। कुछ ही समय बाद उसकी एकाग्रता भंग हो जाती तथा वह परिवर्तन चाहने लगता है। पर अभ्यास एवं नियंत्रण द्वारा उसके बंदर स्वभाव को बदला भी जा सकता है। यह प्रक्रिया समयसाध्य होते हुए भी असंभव नहीं है। एक बार एकाग्रता का अभ्यास बन जाने से जीवनपर्यंत के लिए लाभकारी सिद्ध होता है।

सोचने की प्रक्रिया में विषयों पर एकाग्रता ही नहीं स्वस्थ और सही दृष्टिकोण का होना भी आवश्यक है। किसी भी विषय पर दो प्रकार से सोचा जा सकता है—विधेयात्मक भी, निषेधात्मक भी। परस्पर विरोधी दोनों ही दिशाओं में एकाग्रता का अभ्यास किया जा सकता है। इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को हर व्यक्ति जानता है कि निषेधात्मक चिंतन से मनुष्य की वैचारिक क्षमताओं में ह्रास होता है। विधेयात्मक दृष्टिकोण से ही चिंतन का सही लाभ लिया जा सकता है।

निषेधात्मक चिंतन से बचने का तरीका यह भी हो सकता है कि अपनी गरिमा पर विचार करते रहा जाए तथा यह अनुभव किया जाए कि मानव जीवन एक महान उपलब्धि है, जिसका उपयोग श्रेष्ठ कार्यों में होना चाहिए। निकृष्ट चिंतन मनुष्य को उसकी गरिमामय स्थिति से गिराता है, यह विश्वास जितना सुदृढ़ होता चला जाएगा, विधेय चिंतन को उतना ही अधिक अवसर मिलेगा।

पूर्वाग्रहों से ग्रसित होने पर भी सही चिंतन बन नहीं पड़ता। किसी विचारक का यह कथन शत-प्रतिशत सच है कि जो जितना पूर्वाग्रही

हो, यह चिंतन की दृष्टि से उतना ही पिछड़ा होगा। परिवर्तनशील इस संसार में मान्यताओं एवं तथ्यों को बदलते देरी नहीं लगती। अतएव मन-मस्तिष्क को सदा खुला रखना चाहिए ताकि यथार्थता से वंचित न रहना पड़े। खुले मन से हर औचित्य को बिना किसी ननुनच के स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। तथ्यों की ओर से आँखें बंद रखने पर कितनी ही जीवनोपयोगी बातों से वंचित रह जाना पड़ता है।

किसी विषय पर एकांगी चिंतन भी सही निष्कर्षों पर नहीं पहुँचने देता। उस चिंतन में मनुष्य की पूर्वमान्यताओं का भी योगदान होता है। सही विचारणा के लिए यह भी आवश्यक है कि अपनी पूर्व मान्यताओं, आग्रहों तथा धारणाओं का भी गंभीरता से पक्षपातरहित होकर विश्लेषण किया जाए। पक्ष और विपक्ष दोनों पर ही सोचा जाए। किसी विषय पर एक तरह से सोचने की अपेक्षा विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखकर चिंतन किया जाए। स्वस्थ और यथार्थ चिंतन तभी बन पड़ता है। एकांगी मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों को तोड़ना संभव हो सके तो सर्वांगीण प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

विचारों का सही विश्लेषण सतही स्तर पर कर सकना संभव नहीं है। घटना अथवा विषय विशेष की परिस्थिति की गहराई में जाए बिना विचारणा के निष्कर्ष भी अधूरे, एकांगी और कभी-कभी गलत होते हैं। उल्लेखनीय बात यह भी है कि विचार-विश्लेषण की सही प्रक्रिया अपने ही बलबूते संपन्न की जा सकती है, न कि दूसरे के सहयोग से। सामयिक रूप से कोई वैचारिक सहयोग, सुझाव एवं परामर्श दे भी सकता है, पर हर क्षण अपने विचारों का निरीक्षण मात्र मनुष्य स्वयं ही कर सकता है। सही ढंग से उचित-अनुचित का विश्लेषण एवं चयन भी वही कर सकता है। कहा जा चुका है कि विचारणा में पूर्व अनुभवों एवं आदतों की भी पृष्ठभूमि होती है। इस तथ्य से दूसरे व्यक्ति परिचित नहीं होते। अपनी वैचारिक पृष्ठभूमि का हर व्यक्ति थोड़े प्रयत्नों से स्वयं पता लगाकर उसमें आवश्यक हेर-फेर कर सकता है। आत्मविश्लेषण के लिए मन एवं उसकी प्रवृत्तियों को विवेक

के नेत्रों से देखना पड़ता है। कठिन होते हुए भी यह कार्य असंभव नहीं है।

क्या उचित है और क्या अनुचित? कौन सा कार्य औचित्यपूर्ण है, कौन सा अनौचित्य से भरा इसका पता लगाना असंभव नहीं है, हर कोई थोड़े प्रयास से इसमें अपने को दक्ष कर सकता है।

एक समय में एक से अधिक विषयों पर चिंतन करने से भी उथले परिणाम हाथ लगते हैं। एकाग्रता न बन पाने से विषय की गहराई में जाना संभव नहीं हो पाता। एक से अधिक विषयों पर एक साथ विचार करने से विचारों में भटकाव आता है, किसी उपयोगी परिणाम की आशा नहीं रहती। कई बातों में विचारों को भटकने देने की खुली छूट देने की अपेक्षा उपयोगी यह है कि एक समय में एक विषय पर सोचा जाए और जितना सोचा जाए पूरे मनोयोगपूर्वक। मनीषी, विचारक, वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यकार कुछ महत्त्वपूर्ण समाज को इसीलिए दे पाते हैं कि वे अपने विचारों को भटकने-बिखरने नहीं देते। एक ही विषय के इर्द-गिर्द पूरी तन्मयता के साथ उन्हें घूमने देते हैं, सार्थक परिणति भी इसीलिए होती है।

कर्म-विचारों के गर्भ में ही पकते हैं। जैसे भी विचार होंगे उसी ढंग की गतिविधि मनुष्य अपनाएगा। जो प्रयास को सफल, उपयोगी और कल्याणकारी बनाना चाहते हैं, उन्हें सर्वप्रथम अपनी विचारणा की प्रक्रिया से अवगत होना चाहिए। अनुपयोगी निषेधात्मक को सुधारने, बदलने तथा उपयोगी को बिना किसी असमंजस के स्वीकारने के लिए सतत तैयार रहना चाहिए।

चिंतनक्रम व्यवस्थित हो

जीवन एक लंबा पथ है जिसमें कितने ही प्रकार के झंझावात आते रहते हैं। कभी संसार की प्रतिकूल परिस्थितियाँ अवरोध खड़ा करती हैं तो कभी स्वयं की आकांक्षाएँ। ऐसे में संतुलित दृष्टि न हो तो भटकाव ही हाथ लगता है। असफलताओं के प्रस्तुत होते ही असंतोष बढ़ता आता है तथा मनुष्य अनावश्यक रूप से भी चिंतित रहने लगता है। संतुलन के अभाव में चिंता आदत में शुमार होकर अनेकों प्रकार

की समस्याओं को जन्म देती है। अधिकांश कारण इनके निराधार ही होते हैं।

चिंता किस प्रकार उत्पन्न होती है? इस संबंध में प्रख्यात मनोवैज्ञानिक मैकडूगल लिखते हैं–"मनुष्य की इच्छाओं की आपूर्ति में जब अड़चनें आती हैं तो उसका विश्वास आशंका और निराशा में परिवर्तित हो जाता है, पर वह आई अड़चनों तथा विफलताओं से पूर्णतः निराश नहीं हो जाता, इसलिए उसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ अपनी पूर्ति और अभिव्यक्ति का प्रयास करती रहती हैं। सामाजिक परिस्थितियाँ तथा मर्यादाएँ मनुष्य के लिए सबसे बड़ी अवरोध बनकर सामने आती हैं तथा इच्छाओं की पूर्ति में बाधक बनती हैं, जिससे उसके मन में आंतरिक संघर्षों के लिए मंच तैयार हो जाता है। इसी में से असंतोष और चिंता का सूत्रपात होता है, अनावश्यक चिंता उत्पत्ति के अधिकांश कारण मनोवैज्ञानिक होते हैं।"

एक सीमा तक चिंता की प्रवृत्ति भी उपयोगी है, पर जब वह मर्यादा सीमा का उल्लंघन कर जाती है तो मानसिक संतुलन के लिए संकट पैदा करती है। व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन से जुड़े कर्त्तव्यों के निर्वाह की चिंता हर व्यक्ति को होनी चाहिए। बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षण एवं विकास की, उन्हें आवश्यक सुविधाएँ जुटाने की चिंता अभिभावक न करें, अपनी मस्ती में डूबे रहें। भविष्य की उपेक्षा करके वर्तमान में तैयारी न करें तो भला उनके उज्ज्वल भविष्य की आशा कैसे की जा सकती है? विद्यार्थी खेलकूद में ही समय गँवाता रहे, आने वाली परीक्षा की तैयारी न करे तो उसके भविष्य का अंधकारमय होना सुनिश्चित है।

'जो होगा सो देखा जाएगा'–किसान यह नीति अपनाकर फसलों की देखरेख करना छोड़ दे, निराई–गुड़ाई करने की व्यवस्था न बनाए, खाद–पानी देना बंद कर दे तो फसल को चौपट होते देर न लगेगी। व्यवसाय में व्यापारी बाजार भाव के उतार–चढ़ाव के प्रति सतर्क न रहे तो उसकी पूँजी को डूबते देर न लगेगी। सीमा प्रहरी रातोंदिन पूरी मुस्तैदी के साथ सीमा पर डटे चहलकदमी करते रहते हैं। सुरक्षा की चिंता वे

न करें तो दुश्मन-घुसपैठियों से देश को खतरा उत्पन्न हो सकता है। मनीषी, विचारक, समाजसुधारक, देशभक्त, महापुरुष का अधिकांश समय विधेयात्मक चिंतन में व्यतीत होता है। उन्हें देश, समाज, संस्कृति ही नहीं, समस्त मानव जाति के उत्थान की चिंता होती है। सर्वजनीन तथा सर्वतोमुखी प्रगति के लिए वे योजना बनाते और चलाते हैं। यह विधेयात्मक चिंता ही है, जिसकी परिणति रचनात्मक उपलब्धियों के रूप में होती है।

मानव जीवन वस्तुतः अनगढ़ है। पशु-प्रवृत्तियों के कुसंस्कार उसे पतन की ओर धकेलने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। उनकी अभिप्रेरणा से प्रभावित होकर इंद्रियों को मनमानी बरतने की खुली छूट दे दी जाए तो सचमुच ही मनुष्य पशुओं की श्रेणी में जा बैठेंगे, पर यह आत्मगरिमा को सुरक्षित रखने की चिंता ही है जो मनुष्य को पतन के प्रवाह में बहने से रोकती है। मानवी काया में नरपशु भी होते हैं जिनका कुछ भी आदर्श नहीं होता, परंतु जिनमें भी महानता के बीज होते हैं, वे उस प्रवाह में बहने से इनकार कर देते हैं। सुरक्षा प्रहरी की तरह वे स्वयं की प्रवृत्तियों के प्रति विशेष जागरूक होते हैं। हर विचार का, मन में आए संवेगों का वे बारीकी से परीक्षण करते हैं तथा सदैव उपयोगी चिंतन में अपने को नियोजित करते हैं।

चिंता करना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। एक सीमा तक यह मानवी विकास में सहायक भी है। पशुओं का जीवन तो प्रवृत्ति तथा प्रकृति-प्रेरणा से संचालित होता है। शिश्नोदर जीवन वे जीते तथा उसी में आनंद अनुभव करते हैं किंतु मनुष्य की स्थिति भिन्न है। मात्र इंद्रियों की परितृप्ति से उसे संतोष नहीं हो सकता, होना भी नहीं चाहिए क्योंकि उसके ध्येय उच्च हैं। उनकी प्राप्ति के लिए उसे स्वेच्छापूर्वक संघर्ष का मार्ग वरण करना पड़ता है। यह मनुष्य के लिए गौरवमय बात भी है कि वह अपनी यथास्थिति पर संतुष्ट न रहे।

प्रख्यात यूनानी दार्शनिक सुकरात कहा करता था-"एक असंतुष्ट मनुष्य संतुष्ट पशु से कहीं अच्छा है।" सचमुच ही मनुष्य पशुओं की तरह शिश्नोदर जीवन की तृप्ति में ही संतुष्ट हो जाए तो उसका विकास अवरुद्ध हो जाएगा। मानव संस्कृति का इतिहास वस्तुतः निषेधों और

संघर्षों की एक ऐसी गाथा है, जो असंतोष से शुरू हुई पर प्रगति की एक प्रमुख आधार भी बनी। अपनी गईगुजरी स्थिति से उबरने की चिंता मानव को न हुई होती तो आज की प्रगतिशील स्थिति तक पहुँचना संभव न हो पाता।

जिस समाज में मनुष्य रहता है, उसमें अगणित प्रकार के लोग हैं। चाहते हुए भी सबको एक जैसा नहीं बनाया जा सकता। अपने आपे को बदलना सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन पड़ता है। दूसरों की अभिरुचियाँ बदल देना और भी कठिन है। सभी अपनी मनमरजी के अनुकूल ढल जाएँ–यह एक ऐसी हवाई कल्पना है जो कभी पूरी नहीं होती। जो ऐसी कल्पना करते अथवा सोचते हैं, वे वास्तविकता से सर्वथा अपरिचित हैं। व्यक्ति तथा समाज की अधिकांश समस्याएँ भी इसीलिए उत्पन्न होती हैं कि मनुष्य सामाजिक मनोविज्ञान को समझ नहीं पाता। अनावश्यक रूप से चिंतित तथा खिन्न होने का कारण भी यही है कि मनुष्य अपनी कल्पना के अनुरूप समाज और संसार को देखना चाहता है, इस चाह की आपूर्ति कभी नहीं हो पाती।

विभिन्न प्रकृतियों एवं अभिरुचियों वाले व्यक्तियों से, युक्त समाज से जो जितना अधिक तालमेल बिठा लेता है, वह जीवन में उतना ही सफल रहता है। तालमेल बिठाने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि अनौचित्य से समझौता किया जाए वरन यह है कि अच्छाई का जितना अंश जहाँ दिखाई दे उतने अंश से सामंजस्य स्थापित किया जाए। व्यक्तियों की बुराइयों को सुधारने के लिए प्रयत्न तो किया जाए, पर यदि नहीं दूर होती तो उनकी उपेक्षा की जाए। समाज में यदि प्रसन्नतापूर्वक रहना है तो सामंजस्य की प्रवृत्ति विकसित करनी होगी। दूसरों को बदलने की अपेक्षा अपने को बदलना सुगम और हितकर है।

ध्यान यह रखा जाना चाहिए कि चिंता को इस सीमा से आगे न बढ़ने दिया जाए, जिससे कि मानसिक संतुलन को ही खतरा उत्पन्न होने लगे। मनःसंतुलन को किसी भी कीमत पर नहीं गँवाया जाना चाहिए। चिंता को उतना ही महत्त्व दिया जाए जितना कि वह कर्त्तव्य-निर्वाह में सहायक है।

❑

न आत्मविश्वास खोएँ न भयाक्रांत रहें

अपने ऊपर से विश्वास खो बैठने की मन:स्थिति को 'आत्महीनता' (इन्फीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स) कहते हैं। इसमें कोई मस्तिष्कीय विकृति नहीं होती। इसे कोई रोग भी नहीं कहा जा सकता। यह किसी कारण से आरंभ होते-होते, आत्मविश्वास गँवा बैठने की आदत भर है।

इस आदत का प्रमुख लक्षण अपने आप को तुच्छ, हीन, असमर्थ, उपेक्षित एवं पराजित मानना है। ऐसी दशा में व्यक्ति दूसरों से शरमाता है और उनसे पीछा छुड़ाने को मन होता है। कहीं ऐसी जगह छिपने का मन करता है, जहाँ दूसरे लोग देखें नहीं। देखें तो वार्तालाप न करें। उसे एक प्रकार का डर सा लगता है। यह डर किस बात का? कोई मारेगा या त्रास देगा ऐसा भय तो नहीं होता? पर इतना जरूर होता है कि अपने ऊपर से भरोसा उठ जाता है और लगता है कि दूसरों से संबंध साधने पर या तो निंदा होगी या कुछ ऐसा बन पड़ेगा जिसका अर्थ होता है—पराजित या अपमानित होना।

वस्तुत: ऐसी कोई बात नहीं होती कि दूसरे लोग बुरा इरादा रखते हों। द्वेष मानते हों या गिराने, डराने के लिए मिले हों, पर दूसरों के साथ मिलने-जुलने आत्मीयता विकसित करने की सामर्थ्य भीतर से टूट जाती है तो मन की बात किसी के सामने प्रकट करने की हिम्मत नहीं रहती। हौसला पस्त हो जाता है और मिलने पर यही डर बना रहता है कि न जाने कोई क्या पूछ बैठे? उसका उत्तर अपने से बने या नहीं? कुछ उत्तर दिया जाए तो उपहास या विरोध तो न होने लगे?

यों अकारण कोई किसी से लड़ता नहीं और न तिरस्कार की दृष्टि से मिलता-जुलता ही है। सभी को विचारों का आदान-प्रदान करने की-अपनी कहने दूसरे की सुनने की इच्छा होती है क्योंकि

यह मनोरंजन का सुगम और अच्छा तरीका है, पर साथ ही यह भी आवश्यक है कि सामने वाले भी मिलनसार हों। वह अकारण दोषी की तरह झेंपता-झिझकता न हो। अन्यथा उपेक्षा दिखाने पर, दबे-दबे, धीमे-धीमे शब्दों में कुछ उत्तर देने में अपनी ओर से वार्तालाप न करने से दूसरा आदमी भी खीझता नहीं तो कम से कम इतना तो करता ही है कि लोकाचार की सामान्य वार्ता करने के उपरांत अपना मुख मोड़ ले और किसी से बात करने लगे। यह स्वाभाविक भी है, पर वह झेंपू व्यक्ति इसे भी अपनी उपेक्षा या पराजय मानता है और इस मिलन पर कोई प्रसन्नता व्यक्त नहीं करता।

देहाती परंपरा के अनुसार नववधुओं को कई दिन तक घूँघट निकालकर चुपचाप किसी कोने में पीठ फेरकर बैठा रहना पड़ता है। कुछ कहना हो तो इतने धीमे शब्दों में अति संक्षेप में या इशारे से अपनी बात कहती हैं। पुरातनपंथी वृद्धाएँ इस संकोचशीलता को सराहती भी हैं और ऊँचे कुल-खानदान की बात कर उसे सराहती हैं। कई पुरुष भी ऐसी ही मनःस्थिति के होते हैं-संकोचशील या डरपोक। इससे सर्वत्र अजनबी वातावरण ही दिखते और परिचित भी अपरिचित जैसे लगते हैं और खुलकर वार्तालाप करते हुए उन्हें संकोच सताता है। अपनी व्यथा एवं समस्या तक मुँह खोलकर कह नहीं पाते फिर दूसरों का परामर्श या समाधान प्राप्त करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

आमतौर से अशिक्षित महिलाओं में यह दोष उन क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है, जहाँ घूँघट-परदे का रिवाज अधिक होता है। वे घुटती रहती हैं, पर अपनी कठिनाइयों को कह नहीं पातीं। लगाए गए दोषारोपणों को निर्दोष होते हुए भी सुनती रहती हैं। उत्पीड़न-शोषण भी सहती हैं, पर आँसू बहाने के और चुप रहने के अतिरिक्त और कुछ कह नहीं पातीं। चुप रहना भी अर्द्धस्वीकृति मानी जाती है। जहाँ दोषारोपण पर सर्वथा चुप रहना-शालीनता का चिह्न माना जाता है। वहाँ उससे यह भी प्रकट होता है कि आक्षेप सही है अन्यथा सफाई क्यों नहीं दी गई। ऐसी महिलाओं पर गुंडे-बदमाश भी घात लगाते और छेड़खानी करने

में नहीं चूकते क्योंकि उन्हें यह भय नहीं रहता कि विरोध का सामना करना पड़ेगा। असहाय भेड़-बकरियों की तरह हर कोई उन्हें सताने को बैठा रहता है।

ठीक यही बात पुरुषों के संबंध में भी है। कोई चापलूस उन्हें आध्यात्मिक, दार्शनिक, सज्जन, गंभीर आदि भी कह सकते हैं, पर असल में उन्हें मूर्ख, प्रतिभाहीन और अयोग्य ही समझा जाता है। निरर्थक वाचालता अपनाने वाले भी अपना मूल्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की आँखों में गिरा लेते हैं, पर यह भी स्पष्ट है कि डरपोक और अनावश्यक संकोचशील अपनी योग्यता में कमी होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं और जहाँ जाते हैं, वहीं घाटा उठाते हैं। असामाजिक, गैर-मिलनसार व्यक्तियों से कोई प्रसन्न नहीं रहता। उन पर दुराव या दोष लगता है और चाहते हुए भी कुछ परामर्श या सहयोग दे सकने की स्थिति तक नहीं पहुँच पाता। इस प्रकार यह आदत मनुष्य को पग-पग पर नीचा दिखाने वाली ही सिद्ध होती है। ऐसे लोग जीवन में कभी महत्त्वपूर्ण सफलता अर्जित नहीं कर सकते। भले ही वे भाग्य को, समय को या संबंधियों को इसके लिए दोषी ठहराते रहें। अस्तु, जिन्हें भी इस व्यथा ने घेर लिया हो, उन्हें इसके दुष्परिणाम समझने चाहिए और धीरे-धीरे मिलनसारी की, वार्तालाप की और हँसने-हँसाने की आदत डालनी चाहिए। अपनी कहने और दूसरे की सुनने वाले सहज ही अपने मित्र बना लेते हैं और शत्रुता की लकीरों को धोकर सहज ही साफ कर देते हैं।

उससे अगला चरण है-भयाक्रांत रहने का। इसकी मानसिक रोगों में भी गणना होती है और उपचार के लिए चिकित्सकों, मनोविज्ञानियों एवं भूत झाड़ने वाले ओझाओं का दरवाजा खटखटाना पड़ता है। इस भयाक्रांत मनःस्थिति को चिकित्सकों की भाषा में 'फोबिया' कहते हैं। इसे सनक की तुलना में अधिक कष्टप्रद मानते हैं। सनकी व्यक्ति कल्पना करता है और बिना प्रमाण की खोजबीन की आवश्यकता समझे अशुभ मान्यताएँ गढ़ लेता है और उसी दुराग्रह के कारण अपना और दूसरों का अनर्थ करता है। उन पर

किसी के समझाने का भी असर नहीं पड़ता। ऐसे लोगों की अर्द्ध-विक्षिप्तों में गणना होती है। सनकी लोग उन्मादियों की तरह बिना आगा-पीछा सोचे कुछ भी भला-बुरा कर सकते हैं। वे किसी की बात पर ऐसा भरोसा भी कर सकते हैं जैसा कि अंध-विश्वासी करते हैं। आवेश उतरने पर उन्हें पछताते, सिर धुनते देखा गया है।

'फोबिया' भयाक्रांत मनःस्थिति के रोगी हर समय डरते रहते हैं और कारण न होने पर भी कल्पना के सहारे गढ़ लेते हैं। ऐसे लोग वयस्क होते हुए भी अँधेरे में उठकर पेशाब तक नहीं जा सकते। चूहों की खट-खट उन्हें चोरों की सेंध लगाने जैसी प्रतीत होती है। झुरमुट या पेड़ की हिलती डालियाँ भूत-चुड़ैलों जैसी लगती हैं। ऐसे लोग ज्योतिषियों के चंगुल में आसानी से फँस जाते हैं। डर का लाभ उठाकर ग्रहशांति करने वाले या भूत भगाने वाले उनकी उलटे उस्तरे से हजामत बनाते रहते हैं।

भयाक्रांत के मन में निरंतर आक्रमण, प्रतिशोध और विश्वासघात छाया रहता है। वे अकारण अपना जीवन भार बना लेते हैं और मित्रों पर भी शत्रुओं जैसे आरोप लगाते हैं। भविष्य उन्हें कठिनाइयों और विपत्तियों से भरा हुआ दीखता है।

इस मनःस्थिति को अपने भीतर विवेकशीलता, यथार्थवादिता साहसिकता अपनाकर दूर किया जा सकता है। यह कार्य भले ही स्वयं कर लिया जाए या किसी विचारशील का आश्वासन-प्रोत्साहन उपलब्ध कर लिया जाए।

आत्मविश्वास ही सफलता का मूल-मंत्र

स्वामी रामतीर्थ कहते थे-''धरती को हिलाने के लिए धरती से बाहर खड़े होने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है आत्मा की शक्ति को जानने-जगाने की।'' इस उक्ति में आत्मा की शक्ति की उस महत्ता का प्रतिपादन किया गया है, जिसका दूसरा नाम आत्मविश्वास है। जिसका साक्षात्कार करके कोई भी व्यक्ति अपने परिवार में तथा अपने में आशातीत परिवर्तन कर सकता है। विवेकानंद, बुद्ध, ईसा,

सुकरात और गांधी की प्रचंड आत्मशक्ति ने युग के प्रवाह को मोड़ दिया। अभी हाल के स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी ने सशक्त ब्रिटिश साम्राज्य की नींव उखाड़ दी। उन्होंने अपनी दृढ़ संकल्प शक्ति तथा आत्मविश्वास के सहारे अँगरेजों को भारत छोड़ने पर विवश किया। स्वामी विवेकानंद एवं रामतीर्थ जब संन्यासी का वेश धारण कर अमेरिका गए तो उपहास के पात्र बने, किंतु बाद में उन्होंने आत्मविश्वास के सहारे विश्व को जो कुछ दिया, वह अद्वितीय है।

आत्मविश्वास के समक्ष विश्व की बड़ी से बड़ी शक्ति झुकती रहेगी। इसी आत्मविश्वास के सहारे आत्मा और परमात्मा के बीच तादात्म्य उत्पन्न होता है तथा अजस्र शक्ति के स्रोत का द्वार खुल जाता है। कठिन परिस्थितियों एवं हजारों विपत्तियों के बीच भी मनुष्य आत्मविश्वास के सहारे आगे बढ़ता जाता है तथा अपनी मंजिल पर पहुँचकर रहता है।

मानव जाति की उन्नति के इतिहास में महापुरुषों के आत्मविश्वास का असीम योगदान रहा है। भौतिक दृष्टि से तात्कालिक असफलताओं को शिरोधार्य करते हुए भी उन्होंने विश्वास न छोड़ा और अभीष्ट सफलता प्राप्त की। आत्मविश्वास का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। लौकिक एवं अलौकिक सफलताओं का आधार यही है। उसके सहारे ही निराशा में आशा की झलक दीखती है। दुःख में भी सुख का आभास होता है। इससे बड़े-बड़े कार्य संपन्न किए जा सकते हैं, किए गए हैं। चीन की दीवार, मिस्र के पिरामिड, पनामा नहर एवं दुर्गम पर्वतों पर विनिर्मित सड़कें व भवन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं।

वस्तुतः समस्त शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का आधार आत्मविश्वास ही है। इसके अभाव में अन्य सारी शक्तियाँ सुप्तावस्था में पड़ी रहती हैं। जैसे ही आत्मविश्वास जाग्रत होता है, अन्य शक्तियाँ भी उठ खड़ी होती हैं और आत्मविश्वास के सहारे असंभव समझे जाने वाले कार्य भी आसानी से पूरे हो जाते हैं।

वैयक्तिक जीवन में भी आत्मविश्वास ही संपूर्ण सफलताओं का आधार है। विश्वास के अभाव में ही श्रेष्ठतम उपलब्धियों से लोग

वंचित रह जाते हैं। असफलताओं का कारण है—अपनी क्षमता को न पहचान पाना और अपने को अयोग्य समझना। जब तक अपने को अयोग्य, हीन, असमर्थ समझा जाएगा, तब तक सौभाग्य एवं सफलता का द्वार बंद ही रहेगा।

व्यक्ति जब अपने अंदर छिपी हुई शक्तियों के स्रोत को जान लेता है तो वह भी देवतुल्य बन जाता है। विश्वास के जाग्रत होते ही आत्मा में छिपी हुई शक्तियाँ प्रस्फुटित हो उठती हैं। हमारे अंदर के श्रेष्ठ विचार महत्त्वपूर्ण कार्य के रूप में परिणत हो जाते हैं। इसके विपरीत अपने प्रति अविश्वास से तो शक्ति के स्रोत सूख जाते हैं और लोग भंडार के होते हुए भी दीन तथा दरिद्र ही बने रहते हैं।

अपने विषय में जैसी मान्यता बनाई जाती है, इसके द्वारा भी वैसा ही व्यवहार किया जाता है। जो व्यक्ति अपने को मिट्टी समझता है, अवश्य कुचला जाता है। धूल पर सभी पाँव रखते हैं किंतु अंगारों पर कोई नहीं रखता। जो व्यक्ति कठिनतम कार्यों को भी अपने करने योग्य समझते हैं, अपनी शक्ति पर विश्वास करते, वे चारों ओर अपने अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर लेते हैं। जिस क्षण व्यक्ति दृढ़तापूर्वक किसी कार्य को करने का निश्चय कर लेता है तो समझना चाहिए कि आधा कार्य पहले ही पूर्ण हो गया। दुर्बल प्रकृति के व्यक्ति शेखचिल्ली के समान कोरी कल्पनाएँ मात्र किया करते हैं किंतु मनस्वी व्यक्ति अपने संकल्पों को कार्य रूप में परिणत कर दिखाते हैं।

विराट वृक्ष की शक्ति छोटे से बीज में छिपी रहती है। यही बीज खेत में पड़कर उपयोगी खाद-पानी प्राप्त करके बड़े वृक्ष के रूप में प्रस्फुटित होता है। उसी प्रकार मनुष्य के अंदर भी समस्त संभावनाएँ एवं शक्तियाँ बीजरूप में छिपी हुई हैं, जिनको विवेक के जल से अभिसिंचित कर तथा श्रेष्ठ विचारों की उर्वरा खाद देकर जाग्रत किया जा सकता है। यदि व्यक्ति अपने अंदर की अमूल्य शक्ति एवं सामर्थ्य को जान लेने में सफल हो जाए तो वह सामान्य से असामान्य और असामान्य से महान हो सकता है।

मनुष्यों की संगठित शक्ति यदि श्रेष्ठ मार्ग पर चल पड़े तो विश्व का कायाकल्प ही हो सकता है। शक्ति के उदित होते ही असंभव समझे जाने वाले कार्य भी संभव हो जाते हैं, जिनको पूर्ण हुए देखकर आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता।

मानव जीवन ईश्वर का दिया हुआ सर्वोपरि उपहार है। इसका महत्त्व एवं गरिमा तभी है जब व्यक्ति इन पंगु विचारों को अपने मन में स्थान न दे। उनसे शक्ति का प्रवाह बंद हो जाता है। ईश्वरीय अनुदान एवं दी हुई शक्ति का महत्त्व जीवन के सदुपयोग में है। अपने को उठाना तथा दूसरों को भी उठाने में सहयोग करने में ही मानव जीवन की सार्थकता है।

जब तक हम किसी कार्य में अपनी समस्त शक्तियाँ लगा नहीं पाते, मन एकाग्र नहीं करते, तब तक वह कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। कार्य जितना कठिन होता है, उसके लिए उतने ही दृढ़ विश्वास एवं योगी की तरह तन्मय होकर निरंतर प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है। ईश्वरीय सत्ता भी उन्हीं की सहायता करती है जो स्वयं प्रयत्नशील हैं।

आत्मविश्वास, सतत परिश्रम एवं दृढ़ निश्चय के समक्ष कुछ भी असंभव नहीं है। इन्हीं गुणों के प्रकाश में ऐतिहासिक कार्य संसार में संपन्न हुए हैं। विद्वानों, महापुरुषों, धर्मप्रवर्तकों, योद्धाओं, सृजेताओं, शोधकर्त्ताओं के ज्वलंत उदाहरण इस बात के साक्षी हैं कि उन्होंने आत्मविश्वास के आधार पर क्या नहीं कर दिखाया?

छोटी-छोटी बैटरियों की शक्ति शीघ्र ही समाप्त हो जाती है किंतु जिन बत्तियों का संबंध पावर हाउस से होता है, वे निरंतर जलती रहती हैं। आत्मविश्वास वह संपर्क माध्यम है जिसके सहारे अकूत शक्ति के भंडार परमात्मा के साथ संबंध स्थापित किया जा सकता है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करे। स्वार्थ से दूर रहकर अपनी दृष्टि का विकास करे। सद्गुणों को धारण कर इसी जीवन में गौरवान्वित एवं सम्मानास्पद बना जा सकता है।

श्रेष्ठ मार्ग पर नियोजित व्यक्तियों की शक्तियाँ श्रेयस्कर परिणाम उपस्थित करती हैं, जिसे लोग भाग्य का चमत्कार समझते हैं। वास्तव में वे व्यक्ति की दृढ़ निष्ठा एवं आत्मविश्वास का परिणाम ही होती हैं।

विधेयात्मक ही सोचें, रचनात्मक ही विचारें

मनोवैज्ञानिक डॉ. नारमन विन्सेंट पीले के अनुसार मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास उसके चिंतन और चरित्र पर निर्भर करता है। निषेधात्मक या विधेयात्मक चिंतन एक प्रकार की विचार शैली है जिसमें व्यक्ति विषम या प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना मनोबल ऊँचा बनाए रहता है और अच्छे परिणामों की आशा रखता है। विपन्न परिस्थितियाँ, प्रतिकूलताएँ एक नया स्वर्णिम सुअवसर लेकर आती हैं जिनसे यह सबक सीखना और अपने व्यक्तित्व को निखारना, प्रखर बनाना अनिवार्य समझता है। विधेयात्मक पक्ष की ओर देखना, सोचना, संकल्पयुक्त विवेकशील मन की एक प्रक्रिया है जो व्यक्ति के चयन पर निर्भर करती है।

अच्छाइयों में आस्था रखने वाले आत्मविश्वासी-उत्साही व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में यह बात सदैव जीवंत बनी रहती है कि प्रगति का एक दरवाजा बंद हो जाने पर सुनिश्चित रूप से दूसरे अनेक रास्ते खुलेंगे ही। विधेयात्मक दृष्टिकोण अपनाने वाले सदैव बुराइयों से अपना पीछा छुड़ाने और अच्छाइयों को अपनाने का प्रयत्न करते हैं। फलतः अच्छाइयाँ उनके जीवन और दृष्टिकोण का अंग बन जाती हैं। ऐसे व्यक्ति उज्ज्वल भविष्य की ओर देखते हैं और अंधकारमय क्षणों-प्रतिकूल परिस्थितियों में अधिक प्रफुल्ल, उत्पादक और रचनात्मक दिशाधारा अपनाते हैं। यह मनोदशा ही उन्हें द्रुतगति से सफलता की ओर ले जाती है। उत्साही व्यक्ति ही इन विघ्न-बाधाओं से लोहा लेते और उन्हें निरस्त करते हुए प्रगतिपथ पर आगे बढ़ते हैं।

प्रख्यात विचारक एवं मनीषी विलियम जेम्स के अनुसार, संसार में दो तरह के व्यक्ति पाए जाते हैं। पहले हैं-टफ माइंडेड (सख्त स्वभाव वाले) तथा दूसरे हैं-टेंडर माइंडेड (नरम स्वभाव वाले संवेदनशील व्यक्ति) नरम स्वभाव वाले व्यक्ति कठिनाइयों, विघ्न-बाधाओं के उपस्थित हो जाने पर विचलित हो उठते हैं। आलोचना किए जाने पर तो उनका दिल ही बैठ जाता है। वे ऐसे व्यक्ति होते हैं

जो रिरियाते, चीखते-चिल्लाते भर हैं और कुछ न कर पाने के कारण असफलता ही उनके हाथ लगती है। सख्त मिजाज वालों की स्थिति इनसे भिन्न होती है। जीवन के हर क्षेत्र में वे सक्रिय और सफल होते देखे जाते हैं। कैसी ही विषम कठिनाई या प्रतिकूलता क्यों न हो उससे वे हार नहीं मानते। प्रतिकूलता को ईश्वर का वरदान समझकर नई सूझ-बूझ के साथ उसका सामना करते हैं। विश्वप्रख्यात लेखक स्काट निवासी थामस कार्लाइल ऐसे ही थे जिन्हें अपनी सारी जिंदगी फाका-मस्ती में काटनी पड़ी थी। फिर भी अध्यवसाय के बलबूते वे सफलता की चरम सीमा तक पहुँचे थे। उनकी समाधि पर बने चबूतरे के एक ओर खुदी उनकी कुछ प्रेरक पंक्तियाँ आज भी स्काटवासियों के लिए ही नहीं, वरन समस्त विश्ववासियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हुई हैं। प्रेरक पंक्तियों का निष्कर्ष है, "न तो कभी निराश हो और न कभी हार मानो। उठो, खड़े हो जाओ और संघर्ष करो जब तक विजयी न हो जाओ। ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा।" कार्लाइल कहते हैं- "जीवन हममें से प्रत्येक से यही पूछता है कि क्या तुम बहादुर बनोगे अथवा कायर बनना पसंद करोगे? निश्चय ही हमें मजबूत, निर्भय और उत्साही बनना होगा। विधेयात्मक चिंतन करने वाला व्यक्ति कायर नहीं हो सकता। वह स्वयं के जीवन में, मानवता और ईश्वर में विश्वास रखता है। अपनी योग्यता और क्षमता को पहचानता है। वह निर्भीक एवं अपराजेय होता है। जो कुछ सामने आता है, उसी से अपने उपयोग की अच्छाइयाँ छाँट लेता है।"

भली-बुरी परिस्थितियों का निर्माण करना, बहादुर या कायर बनना व्यक्ति के अपने दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। विधेयात्मक पक्ष अपनाने पर कायर व्यक्ति भी धीरे-धीरे निडर और हिम्मत वाला बन जाता है, उसकी सारी परिस्थितियाँ पलट जाती हैं। अपनी त्रुटियों को पहचानना, उन्हें सुधारना, किए पर पश्चात्ताप करना, दंड पाना और भविष्य में वैसा न होने देने को कृतसंकल्पित होना अनिवार्य है। मन में सद्विचारों, सत्कर्मों और दृढ़ संकल्पों की त्रिवेणी जहाँ सदैव हिलोरें मारती रहती हैं, वहाँ प्रगति का रुका हुआ अवरुद्ध मार्ग अपने

आप रह जाता है। सद्विचारों में असीम शक्ति होती है। विचार गत्यात्मक, जीवंत और रचनात्मक हों तो व्यक्ति परिस्थितियों को बदल सकता है, उन पर नियंत्रण कर सकता है और अपना भविष्य सुखमय बना लेता है। लेकिन यदि विचार हेय स्तर के घृणा, बेईमानी और असफलता से भरे हुए हैं तो वे व्यक्ति तथा समाज के लिए विनाशकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं।

डिजराइली कहा करते थे कि हमें अपने मस्तिष्क को महान विचारों से भर लेना चाहिए तभी हम महान कार्य संपादित कर सकते हैं। लोग क्षुद्र विचारों को अपने बारे में, अपने बीबी–बच्चों, परिवार, व्यापार आदि के संबंध में ही सोचते और मरते–खपते रहते हैं। परिणामतः उसी स्तर के प्रतिफल भी उन्हें हाथ लगते हैं। यह एक तथ्य है कि जितना महान दृष्टिकोण और ऊँचे विचार होंगे, उसी अनुपात में हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता जाएगा। मनोवैज्ञानिकों की अवधारणा है कि मन–मस्तिष्क या अंतःकरण में उठने वाली वैचारिक तरंगें, कल्पनाएँ या भावनाएँ हमारे व्यक्तित्व को प्रकाशित करती हैं।

❐

प्रतिकूलताओं से जूझें, संतुलन बनाए रखें

जीवन जीते समय खिलाड़ी द्वारा खेले जाने जैसी मनःस्थिति होना चाहिए। आएदिन घटित होने वाले घटनाक्रमों को संसार में निरंतर चलने वाली अनुकूल–प्रतिकूल लहरों में से एक मानना चाहिए। समुद्र में ज्वार–भाटे आते रहते हैं, तालाबों में लहरें उठती रहती हैं, पर इससे उनके अंतराल में स्थिरता ही बनी रहती है, कोई विक्षेप नहीं होता। उसी प्रकार समय–समय पर आती–जाती रहने वाली अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओं के संबंध में भी मन को संयमित-संतुलित बनाए रहना चाहिए। यह तभी संभव हो सकता है, जब बदलती परिस्थितियों की क्रमबद्धता को सामान्य माना जाए, उन्हें असामान्य होने का महत्त्व न दिया जाए।

मनोवैज्ञानिक जैम्स का कथन है–"यह संभव नहीं कि सदा अनुकूलता ही बनी रहे, कभी प्रतिकूलता न आए।" दिनमान की कितनी ही महत्ता क्यों न हो, पर उसका भी संध्याकाल में अवसान होता ही है। दिन के समय जो प्रकाश था, ऊष्मा का जैसा प्रवाह था, उस सबका रात्रि का आगमन होते ही अंत हो जाता है। परिस्थिति सर्वथा विपरीत बन जाती है, सघन अंधकार छा जाता है–इस परिवर्तन को रोका नहीं जा सकता। अंधकार से कितना ही डरा जाए और कोसा जाए, वह नियतिक्रम के अनुरूप आता ही है। उस आगमन को रोकने के लिए सिर खपाने की अपेक्षा यही उचित है कि अपनी गतिविधियों में ऐसा हेर–फेर कर लिया जाए जो परिवर्तित परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठा सके।

रात्रि को आमतौर से सभी सो जाते हैं, इस विवशता के पीछे एक लाभ भी है कि दिनभर के किए हुए श्रम की थकान मिटती है। दूसरे दिन नई स्फूर्ति के साथ काम करने का अवसर मिलता है। दिन छिपने

पर सभी घर लौट आते हैं और परिवार के साथ रहने, मौज मनाने का अवसर प्राप्त करते हैं। रात्रि निरर्थक, असुविधाजनक और डरावनी प्रतीत होती है तो भी विचार करने पर प्रतीत होता है कि उसकी भी अपनी उपयोगिता और आवश्यकता थी। प्रकृति ने इसी आधार पर उसका अहर्निश चलता रहने वाला चक्र घुमाया है।

ऋतु-परिवर्तन में एक-दूसरे से सर्वथा भिन्नता रहती है। वर्षा के दिनों वाली स्थिति सरदी में नहीं रहती। जो दृश्य सरदी के दिनों में दृष्टिगोचर होता है, वह गरमी में नहीं रहता। वसंत और शरद की परिस्थितियाँ अपने ढंग की अनोखी हैं। उस समय जैसी परिस्थितियाँ अन्य किसी ऋतु के साथ नहीं बनती। हो सकता है किसी को कोई ऋतु अनुकूल पड़ती हो किसी को प्रतिकूल। बुवाई के दिनों में वर्षा उपयोगी लगती है और कटाई के दिनों गरम मौसम सुहाता है। कुम्हार पूरे साल सूखा पसंद करता है और माली का उद्यान तब उमगता है जब बदली छाई रहे, बूँदा-बाँदी होती रहे। भावुकों की उमंग वसंत में इतराती है। काँस फूलने से शरद में समूचा क्षेत्र सुहावना लगता है। यह पसंदगियाँ किन्हीं को कितनी ही प्रिय क्यों न लगती हों। पर उनका सदा बने रहना संभव नहीं। थोड़े-थोड़े समय के लिए ये अपनी छटा दिखाती हैं और फिर दूसरे दौर में बदल जाती हैं। उन्हें इस बात की परवाह नहीं रहती कि उनका आगमन-पलायन किनको प्रिय लगता है और किनको अप्रिय? नियति का क्रम नहीं बदला जा सकता, अपने को ही उस परिवर्तन के अनुरूप ढालना बदलना पड़ता है।

खेल-खिलाड़ी निरंतर हारते-जीतते रहते हैं। ताश-शतरंज में भी हार-जीत होती रहती है, किंतु खेलने वाले उसकी परवाह नहीं करते। चेहरे पर शिकन तक नहीं आने देते, जो इतना कर पाते हैं, उन्हीं को खेल का आनंद आता है। जो हर हार पर उदास होते हैं और जीत पर इतराते हैं उनका खिलाड़ी होना व्यर्थ है।

मध्यवर्ती संतुलन स्वाभाविक स्थिति है। तापमान बढ़ जाने से ज्वर माना जाता है। शरीर ठंडा रहे तो वह भी शीत प्रकोप माना और

चिंताजनक समझा जाता है। रक्तचाप बढ़ने की ही तरह उसका घटना भी रुग्णता का चिह्न है। किसी अनुकूलता से लाभान्वित होने पर हर्षातिरेक में उछलने लगना भी असंगत है और असफलता की प्रतिकूलता का सामना करने पर विषाद में डूब जाना और सिर धुनना भी अविकसित अनगढ़ व्यक्तित्व का चिह्न है। इन असंतुलनों से बचा ही जाना चाहिए।

सभी व्यक्ति इच्छानुकूल आचरण करेंगे—यह आशा रखना व्यर्थ है। सभी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखते हैं। जन्म-जन्मांतरों के संचित भले-बुरे संस्कार साथ लेकर आते हैं। पलने और विकसित होने की परिस्थितियों में भिन्नता रहती है। किसी पेड़ के पत्तों का गठन आपस में मिलता-जुलता है, पर उनमें भिन्नता अवश्य रहती है। हर आदमी के अँगूठे के निशानों में अंतर होता है। एक आकृति-प्रकृति के दो मनुष्य कहीं नहीं देखे गए। भिन्नता ही इस संसार की विशेषता है। उसके आधार पर बहुत तरह से सोचने और स्थिति के अनुरूप बदलने, व्यवहार करने की कुशलता आती है। मनुष्य बहुज्ञ, बहुश्रुत, बहुकौशल संपन्न इसी आधार पर बनता है। उतार-चढ़ावों का सामना करते रहने से ही व्यावहारिकता में निखार आता है।

हलके बरतन चूल्हे पर चढ़ते ही आगबबूला हो जाते हैं और उसमें डाले गए पदार्थ उफनने लगते हैं, पर भारी-भरकम बरतनों में जो पकता है उसकी गति तो धीमी होती है, परिपाक उन्हीं में ठीक से बन पड़ता है। हमें बबूले की तरह फूलना, फुदकना और इतराना नहीं चाहिए। ऐसी रीति-नीति स्थिर नहीं रहती, वह कुछ क्षण में टूट-फूट जाती है। प्रवाह झरने जैसा होना चाहिए जो नियतक्रम से नियत दिशा में प्रवाहमान रहे। तभी वह अपने स्वरूप को सही बनाए रह सकता है, सही रीति-नीति से सही काम कर सकता है।

चंचलता व्यग्रता की मनःस्थिति में सही निर्धारण और सही प्रयास करते-धरते नहीं बन पड़ता। असंतुष्ट और उद्विग्न व्यक्ति जो सोचता है, एकपक्षीय होता है और जो करता है, उसमें हड़बड़ी का समावेश रहता है। ऐसी मनःस्थिति में किए गए निर्धारण या

प्रयास प्रायः असफल ही होते हैं, उन्हें यशस्वी बनने का अवसर नहीं मिलता।

आवेश या अवसाद दोनों ही व्यक्ति को लड़खड़ाती स्थिति में धकेल देते हैं। ऐसी दशा में निर्धारित कार्यों को पूरा कर सकना, साथियों के साथ उपयुक्त तालमेल बिठाए रह सकना कठिन जान पड़ता है। प्रतिकूलताएँ बाह्य परिस्थितियों के कारण जितनी आती हैं उससे कहीं अधिक निज का असंतुलन काम को बिगाड़ता है। व्यक्ति को उपहासास्पद, अस्थिर और अप्रामाणिक बनाता है।

सबसे बड़ी बात यह है कि उत्तेजना शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती है। आक्रोश में भरे हुए उद्विग्न व्यक्ति न चैन से रहते हैं और न दूसरों को रहने देते हैं। रक्त उबलता रहता है, विचारक्षेत्र में तूफान उठता रहता है। फलतः जो व्यवस्थित था वह भी यथास्थान नहीं रह पाता। पाचनतंत्र बिगड़ता है, रक्त-प्रवाह में व्यतिरेक उत्पन्न होता है, असंतुलित मस्तिष्क अनिद्रा, अर्द्धविक्षिप्तता जैसे रोगों से घिरकर स्वास्थ्य संतुलन को गड़बड़ाता है। हमें हँसती-हँसाती स्थिति में ही रहना चाहिए एवं हर परिस्थिति के लिए स्वयं को तैयार रखना चाहिए।

स्वयं को दुर्भाग्यग्रस्त मत मानिए

प्रकृति के नियमों में एक रहस्य बड़ा ही विचित्र, अद्भुत एवं रहस्यपूर्ण है। वह यह है कि हर विपत्ति के बाद उसकी विरोधी सुविधा प्राप्त होती है। जब मनुष्य बीमारी से उठता है तो बड़े जोरों की भूख लगती है, निरोगता शक्ति बड़ी तीव्रता से जाग्रत होती है और जितनी थकान बीमारी के दिनों आई थी, वह तेजी के साथ पूरी हो जाती है। ग्रीष्म की जलन को चुनौती देती हुई वर्षा की मेघमालाएँ आती हैं और धरती को शीतल, शांतिमय हरियाली से ढक देती हैं। हाथ-पैरों को अकड़ा देने वाली ठंड जब उग्र रूप से अपना जौहर दिखा चुकती है तो उसकी प्रतिक्रिया से एक ऐसा मौसम आता है जिसके द्वारा वह शीत सर्वथा नष्ट हो जाता है। रात्रि के बाद दिन का आना सुनिश्चित है, अंधकार के बाद प्रकाश का दर्शन भी अवश्य ही

होता है। मृत्यु के बाद जन्म भी होता ही है। रोग, घाटा, शोक आदि विपत्तियाँ चिरस्थायी नहीं हैं, वे आँधी की तरह आती हैं और तूफान की तरह चली जाती हैं। उनके चले जाने के पश्चात एक दैवी प्रतिक्रिया होती है, जिसके द्वारा उस क्षति की पूर्ति के लिए ऐसा विचित्र मार्ग निकल आता है, जिस बड़ी तेजी से उस क्षति की किसी न किसी प्रकार पूर्ति हो जाती है जो आपत्ति के कारण हुई थी।

एक बार नष्ट हुई वस्तु फिर ज्यों की त्यों उसी रूप में नहीं आ सकती यह सत्य है, परंतु यह भी सत्य है कि मनुष्य को सुसंपन्न, सुखी बनाने वाले और भी कितने ही साधन हैं और उन नए साधनों में से कई एक उस क्षतिग्रस्त व्यक्ति को प्राप्त होते हैं—हो सकते हैं। जब घास को हम बार-बार हरी होते हुए देखते हैं, जब अंधकार को हम बार-बार नष्ट होते देखते हैं, जब रोगियों को पुनः आरोग्य लाभ करते देखते हैं तो कोई कारण नहीं कि विपत्ति के बाद पुनः संपत्ति प्राप्त होने की आशा न की जाए। जो उज्ज्वल भविष्य की आशा नहीं करता, जिसे यह विश्वास नहीं कि मुझे पुनः अच्छी स्थिति प्राप्त होगी—वह नास्तिक है। जिसे ईश्वर की दयालुता पर विश्वास न होगा, वही ऐसा सोच सकता है कि मेरा भविष्य सदा के लिए अंधकार में पड़ गया। जो पर्वत को राई कर सकता है, उसकी शक्ति पर यह भी भरोसा करना चाहिए कि वह राई को पर्वत भी कर सकता है। जो आज रो रहा है, उसे यह न सोचना चाहिए कि उसे सदा ही रोता रहना पड़ेगा। निराशा परमात्मा के परमप्रिय पुत्र को किसी प्रकार शोभा नहीं देती।

जब किसी की एक टाँग टूट जाती है, उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि एक टाँग से चलना तो दूर, खड़ा रहना भी मुश्किल है—अब उससे किसी प्रकार चला-फिरा न जा सकेगा। पर जब अधीरता छोड़कर विवेक से काम लिया जाता है तो कामचलाऊ तरकीब निकल आती है। लकड़ी का पैर लगाकर वह लँगड़ा आदमी अपना काम करने लगता है—इसी प्रकार अन्य कोई अंग-भंग हो जाने पर भी उसकी क्षतिपूर्ति किसी अन्य प्रकार हो जाती है और फिर कुछ दिन बाद उस अभाव का खटकना बंद हो जाता है।

'मैं पहले इतनी अच्छी दशा में था, अब इतनी खराब दशा में आ गया'–यह सोचकर रोते रहना और अपने चित्त को क्लेशान्वित बनाए रहना कोई लाभदायक तरीका नहीं। इससे लाभ कुछ नहीं होता, हानि अधिक होती है। दुर्भाग्य का रोना रोने से, अपने भाग्य को कोसने से मन में एक प्रकार की आत्महीनता का भाव उत्पन्न होता है। मेरे ऊपर ईश्वर का कोप है, देवता रूठ गए हैं, भाग्य फूट गया है–इस प्रकार का भाव मन में आने से मस्तिष्क की शिराएँ शिथिल हो जाती हैं। शरीर की नाड़ियाँ ढीली पड़ जाती हैं, आशा और प्रसन्नता की कमी के कारण नेत्रों की चमक मंद पड़ जाती है। निराश व्यक्ति चाहे किसी भी आयु का क्यों न हो! उसमें बूढ़ों के से लक्षण प्रकट होने लगते हैं, मुँह लटक जाता है, चेहरे पर रूखापन और उदासी छाई रहती है, निराशा और नीरसता उसकी हर एक चेष्टा से टपकती है। इससे आदमी अपने शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य को खो बैठते हैं। मंदाग्नि, दस्त साफ न होना, दाँत का दरद, मुँह के छाले या सोते समय मुँह से लार बहना, सिरदरद, जुकाम, बाल पकना, नींद कम आना, डरावने स्वप्न दीखना, पेशाब में पीलापन व गंदलापन, मुँह या बगलों से अधिक बदबू आना, हाथ–पैरों में हड़फूटन, दृष्टि कम होना, कान में सनसन होना–जैसे रोगों के उपद्रव आएदिन खड़े रहते हैं। निराशा के कारण शरीर की अग्नि मंद हो जाती है, अग्नि की मंदता से उपर्युक्त प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। शनैः शनैः स्वास्थ्य को घुलाता हुआ वह व्यक्ति अल्पायु में ही मृत्यु के मुख में चला जाता है।

जो व्यक्ति अपने आप को दुर्भाग्यग्रस्त मान लेते हैं, उनमें मानसिक शिथिलता भी आ जाती है। कपाल की भूरी मज्जा कुम्हला जाती है, उसमें से चिकनाई कम हो जाती है, विचार शक्तियों का संचालन करने वाले नाड़ी–तंतु कठोर और शुष्क हो जाते हैं, उनमें से जो विद्युत धारा बहा करती है, उसका प्रवाह नाममात्र का रह जाता है। स्फुरण, कंपन, संकुचन, प्रसारण सरीखी वे क्रियाएँ जिनके द्वारा मानसिक शक्तियों में स्थिरता एवं वृद्धि होती है, बहुत ही धीमी पड़ जाती हैं। फल यह होता

है कि अच्छा-भला मस्तिष्क कुछ ही दिन में अपना काम छोड़ बैठता है, उसकी क्रियाशक्ति लुप्त हो जाती है।

कहते हैं कि विपत्ति अकेली नहीं आती, वह अपने साथ और भी अनेक विपत्तियों का जंजाल लाती है। एक के बाद दूसरी आपत्ति सिर पर चढ़ती है-यह बात असत्य नहीं है। निस्संदेह एक कष्ट के बाद दूसरे कष्टों का भी सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि विपत्ति के कारण मनुष्य निराश, दुखी और शिथिल हो जाता है। भूतकाल का स्मरण करने, रोने-धोने और भविष्य का अंधकारमय कल्पनाचित्र तैयार करने में ही उसका मस्तिष्क लगा रहता है, समय और शक्ति का अधिकांश भाग इसी कार्य में नष्ट होता रहता है। जिससे पुनः सुस्थिति प्राप्त करने की दिशा में सोचने और साहसपूर्ण मजबूत कदम उठाने की व्यवस्था नहीं बनती। उधर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य चौपट होने लगता है। एक ओर स्वभाव के बिगड़ जाने के कारण विरोधी बढ़ जाते हैं और मित्रों में कमी हो जाती है, सब ओर असावधानी पर असावधानी होने लगती है। दुष्टता की सत्ता का ऐसे ही अवसरों पर दाँव लगता है, मौका देखकर उनके बाग भी चलने लगते हैं। निर्बल एवं अव्यवस्थित मनःस्थिति का होना-मानो विपत्तियों को खुला निमंत्रण देना है। मरे हुए पशु की लाश पड़ी देखकर दूर आकाश में उड़ते हुए चील-कौए उसके ऊपर टूट पड़ते हैं। इसी प्रकार निराशा से शिथिल और चतुर्मुखी अव्यवस्था से ग्रस्त उस अर्द्धमृत मनुष्य पर आपत्ति और कष्टों के चील-कौए टूट पड़ते हैं और इस उक्ति को चरितार्थ करते हैं कि विपत्ति अकेली नहीं आती।

आकस्मिक विपत्ति का सिर पर आ पड़ना मनुष्य के लिए सचमुच बड़ा दुःखदायी है। इससे उसकी बड़ी हानि होती है किंतु उस विपत्ति की हानि से अनेकों गुनी हानि करने वाला एक और कारण है, वह है-'विपत्ति की घबराहट'। विपत्ति कही जाने वाली घटना, चाहे वह कैसी ही बड़ी क्यों न हो! किसी का अत्यधिक अनिष्ट नहीं कर सकती, वह अधिक समय ठहरती भी नहीं, एक प्रहार करके चली

जाती है, परंतु 'विपत्ति की घबराहट' ऐसी दुष्टा पिशाचिनी है कि वह जिसके पीछे पड़ती है, उसके गले से खून की प्यासी जोंक की तरह चिपक जाती है और जब तक उस मनुष्य को पूर्णतया निःसत्व नहीं कर देती, तब तक उसका पीछा नहीं छोड़ती। विपत्ति के पश्चात आने वाले अनेकानेक जंजाल इस घबराहट के कारण ही आते हैं। शारीरिक, मानसिक और सामाजिक सुस्थिति का सत्यानाश करके वह मनुष्य की जीवनशक्ति को चूस जाती है।

आकस्मिक विपत्तियों से मनुष्य नहीं बच सकता। राम, कृष्ण, हरिश्चंद्र, नल, पांडव, प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविंदसिंह जैसी आत्माओं को विपत्ति ने नहीं छोड़ा तो अन्य कोई उसकी चपेटों से बच जाएगा– ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए। इस सृष्टि का विधि–विधान कुछ ऐसा ही है कि हानि–लाभ का चक्र हर एक के ऊपर चलता रहता है, फिर भी सृष्टि का क्रम रुकता नहीं। प्रतिकूलताएँ आती–जाती हैं। उनसे न घबराकर सामंजस्यपूर्ण जीवन जीना ही बुद्धिमत्ता है।

प्रतिकूलताएँ कभी बाधक नहीं बनतीं

अल्फ्रेड एडलर के अनुसार, मानवी व्यक्तित्व विकास में कठिनाइयों, प्रतिकूल परिस्थितियों का होना आवश्यक है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ह्वाट लाइफ शुड मीन टू यू' में उन्होंने लिखा है– ''यदि हम किसी एक ऐसे व्यक्ति अथवा मानव समाज के विषय में यह कल्पना करें कि वे इस स्थिति में पहुँच गए हैं, जहाँ अब कोई कठिनाइयाँ नहीं रही तो हमारे विचार से ऐसे वातावरण में मनुष्य का विकास रुक जाएगा और जीवन आकर्षणहीन रह जाएगा। ऐसी स्थिति में भविष्य में प्रतीक्षा योग्य उत्साहवर्द्धक कोई बात नहीं रह जाएगी। सब कुछ पूर्व निश्चित होने से तत्परता का, प्रयास का स्थान जड़ता ले लेगी। ऐसी दशा में न तो ज्ञान का विकास होगा और न ही विज्ञान का। कला और धर्म जो अप्राप्य ध्येयों की कल्पना हमारे सामने रखकर हमें प्रफुल्लित रखते हैं, सब अर्थहीन हो जाएँगे। वस्तुतः हम सौभाग्यशाली हैं कि हमारा जीवन कष्ट–कठिनाइयों से भरा है, उतना सरल नहीं है।''

बहुत से लोग कठिनाइयों से बचने के लिए दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करने और अपना काम बनाने के अनेकानेक तरीके अपनाते हैं, पर प्राय: देखा यही जाता है कि अंतत: उन्हें निराशा ही हाथ लगती है। प्रख्यात मनोवैज्ञानिक ग्रीनवी ने अपनी पुस्तक 'सुपर पर्सनैलिटी' में लिखा है-"यह मान्यता सही नहीं है कि लोगों को प्रभावित करने के लिए आकर्षक शरीर संरचना, बढ़ी-चढ़ी विद्वत्ता, प्रचुर संपदा, ठाठ-बाट की साज-सज्जा या किसी विशेष प्रकार की कला-कुशलता अनिवार्य रूप से आवश्यक है। यह विशेषताएँ दूसरों का ध्यान भर आकर्षित करती हैं। बहुत हुआ तो कोई इनसे किसी प्रकार लाभान्वित होने के लिए पीछे लग सकता है, पर जब वैसा कुछ हाथ लगते दीखता नहीं तो निराश होते ही मुँह मोड़ लिया जाता है। वैभव से अपना ही स्वार्थ सिद्ध हो सकता है, दूसरे जिन्हें उनसे कोई लाभ मिलने वाला नहीं है, देर तक आकर्षित नहीं रह सकते।"

वस्तुत: जिसका दूसरों पर प्रभाव पड़ता है, वे सद्गुणों एवं सत्प्रवृत्तियों से युक्त विभूतियाँ होती हैं। उन्हें जहाँ भी पाया जाता है, उनके प्रति अंत:करण में सहज श्रद्धा उमड़ पड़ती है। सज्जनता, नम्रता, उदारता और शिष्टता का अर्थ है-परिपक्व व्यक्तित्व। खिला हुआ फूल अपनी सुंदरता और सुगंध से दर्शकों को सहज प्रसन्नता प्रदान करता है। सद्गुणों की विभूतियों से भरे-पूरे व्यक्ति भी इसी प्रकार सहज श्रद्धा के पात्र बनते हैं। सही तरीके से प्राप्त की गई सफलता सर्वत्र सराही जाती है क्योंकि इनसे प्राप्त करने वाले की लगन और तत्परता का परिचय मिलता है। इनकी शालीनता देखकर भी यही अनुमान लगता है कि यहाँ आत्मपरिष्कार के लिए दूरदर्शिता से भरी-पूरी सतत साधना की गई है।

विभिन्न स्तर की सफलताओं में सर्वोपरि है-सामान्य स्तर के अनगढ़ व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बना सकना। मूर्तिकार पत्थर को गढ़ते और प्रतिमा बनाते हैं, चित्रकार कागज और कलम की सहायता से हृदयग्राही चित्र विनिर्मित करते हैं। वादक बंसरी से राग-रागिनियों की स्वरलहरी बहाते हैं। कलाकारिता के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण और

प्रभावोत्पादक कला है—पेट–प्रजनन भर में व्यतीत होते रहने वाले जीवन को उत्कृष्ट चिंतन और आदर्श गतिविधियों का अभ्यस्त कर लेना। इस सफलता के श्रेयाधिकारियों को जन--जन का सहज सम्मान मिलना ही चाहिए।

पेड़ की शीतल छाया और सुषमा में बैठने वालों को ही नहीं, उसे देखने वालों को भी प्रसन्नता होती है और शांति मिलती है। इसी प्रकार सहृदयता, नीतिमत्ता, साहसिकता, सज्जनता, नम्रता, उदारता, सुरुचि, सुव्यवस्था जैसे सद्गुणों का जहाँ भी विस्तार दीखता है, वहाँ संपर्क में आने वाले हर किसी की सहज श्रद्धा उमगने लगती है।

एल० एच० स्नीडर अपने ग्रंथ 'बिहेवियरल साइकॉलाजी' में लिखते हैं–"विचारों और कार्यों का स्तर सुनिश्चित होना चाहिए, तभी उन्हें निजी पुरुषार्थ का, उपलब्ध साधनों का परिपोषण मिलेगा और सफलता का द्वार खुलेगा। दूसरों का समर्थन–सहयोग भी प्रायः उन्हीं को मिलता है जिन्हें दृढ़ निश्चयी और प्रयास में समग्र तत्परता जुटा सकने वाला समझा जाता है।"

चंचल, उथले और अधूरे मन से किए जाने वाले काम ही प्रायः असफल होते हैं। ऐसा क्यों होता है? अस्थिरता का कारण क्या है? यह खोजने पर प्रतीत होता है कि सैद्धांतिक अपरिपक्वता ही चंचलता का प्रमुख कारण है। दृढ़ता उन निर्णयों में नहीं हो सकती जो उथली स्वार्थपूर्ति पर अवलंबित हैं। लाभ की न्यूनाधिकता का प्रसंग सामने आते ही मन डगमगाने लगता है और एक काम को छोड़कर दूसरे को अपनाने लगता है।

आदर्शवादिता का आधार लोभ या लाभ नहीं, आत्मसंतोष एवं आत्मकल्याण होता है। ऐसी दशा में एक बार पकड़े हुए काम को इसलिए छोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि उसे हटाकर दूसरा करने लगे तो अधिक लाभ मिलेगा। कोई काम न तो छोटा है और न बड़ा। हर कार्य की गरिमा उसके पीछे काम करने वाली निष्ठा के साथ जुड़ी होती है। इस प्रकार छोटे दीखने वाले काम भी सन्निहित

सदाशयता को सुविस्तृत करने में सहायक हो सकते हैं, और बड़े दीखने वाले काम भी अंतःक्षेत्र की निकृष्टता से प्रेरित होने पर सदाशयता के संवर्द्धन में सर्वथा निष्फल रह सकते हैं। उच्चस्तरीय सिद्धांत अपनाकर किसी काम में हाथ डालने पर उसमें आत्मसंतोष का रसास्वादन होता है। फिर प्रतिक्रिया में शिथिलता रहने पर भी उत्साह गिरने या मनोयोग घटने जैसी कोई बात नहीं होती।

आत्मविश्वास और आत्मानुशासन ही उच्चस्तरीय कामों में अंत तक निष्ठा बनाए रहने में समर्थ होते हैं। आत्मविश्वास श्रेष्ठ कामों की सफलता में ही सुनिश्चित रह सकता है। ओछे और खोटे काम अंतःकरण में ऐसा विश्वास जगने ही नहीं देते कि कार्य की सफलता एवं उपयोगिता मिल ही जाएगी या मिलने पर सराही ही जाएगी। यही कारण है कि ओछे मनोरथों से प्रेरित कार्य सदा कर्त्ता को अविश्वासी बनाए रहते हैं। उस अस्थिरता में पूरे मनोयोग से काम नहीं हो पाता और न केवल सफलता संदिग्ध रहती है वरन उसमें उदासी, निराशा एवं ऊब तक उत्पन्न हो सकती है। आएदिन काम बदलते रहने वालों में अधिकांश आदर्शविहीन ही होते हैं। जिन्हें परिस्थितियों ने काम बदलने के लिए विवश-बाधित कर दिया, ऐसे अपवाद तो कम ही देखने को मिलते हैं।

दरबारी-बगीचों में लगे कोमल पौधे तनिक सी गरमी-सरदी पाते ही हिचकियाँ भरने लगते और दम तोड़ने लगते हैं। छुई-मुई किसी की उँगली छू जाने से ही सकुचाती, सिकुड़ती और मुरझाई दीखती है। किंतु पर्वतों और रेगिस्तानों में उगने वाले पौधे ऋतु-प्रभावों की कठोरता को धैर्यपूर्वक सहन करते हुए अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे रहते हैं।

इसके विपरीत जिन्हें अभावों, प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है, वे अपने भीतर ऐसी क्षमता विकसित करते हैं जो आगत कठिनाइयों का सामना करते हुए अस्तित्व की रक्षा कर सकने में समर्थ हो सके। हिमाच्छादित पर्वतों पर उगलने वाले पेड़ों को उस तरह पाला नहीं मारता जैसे कि मध्यम ताप वाले प्रदेशों में तनिक सी ठंढ

बढ़ते ही उनका सिकुड़ना-सूखना आरंभ हो जाता है। रेगिस्तानी सूखे इलाकों की तपती बालू और पानी की कमी में भी कैक्टस आदि पौधे भली प्रकार हरे-भरे बने रहते हैं। उत्तरी ध्रुव पर रहने वाले 'एस्किमो' बरफ की मोटी परतों पर ही समूचा जीवनयापन करते हैं। कठोर श्रम से आहार प्राप्त करने वाले वनवासी स्थिति के अनुरूप सुदृढ़ भी रहते हैं और अभ्यस्त तथा प्रसन्न भी।

कठिनाइयों से, प्रतिकूलताओं से घिरे होने पर भी जीवन का वास्तविक प्रयोजन समझने वाले व्यक्ति कभी निराश नहीं होते। वे हर प्रकार की परिस्थितियों में अपने लक्ष्य से ही प्रेरणा प्राप्त करते तथा श्रेष्ठता के पथ पर क्रमशः आगे बढ़ते जाते हैं। वे संसार को संतुलित दृष्टि से देखते हैं। वे जीवननौका खेते हुए इस सागर को पार कर जाते हैं।

दृष्टिकोण बदला तो सब कुछ बदल गया

यह संसार जिन तत्त्वों से बना है उनमें भलाई-बुराई, नेकी-बदी, कुरूपता-सुंदरता, अनुकूलता-प्रतिकूलता के परस्पर विरोधी स्तरों का समावेश है। इन दोनों ही परिस्थितियों से कोई बच नहीं सकता। समुद्र की बनावट ही ऐसी है कि उसमें ज्वार-भाटे आते रहते और हर वस्तु हिलती रहती है। परमाणुओं से लेकर सौरमंडल और ब्रह्मांड में कहीं स्थिरता नहीं। सर्वत्र हलचल की धूम है, इतना ही नहीं उसके साथ ही प्रिय-अप्रिय भी जुड़ा है। यदि अपने चिंतन को मात्र अप्रिय निषेधात्मक पक्ष के साथ जोड़ा जाए तो दुःखदायी घटनाएँ ही स्मरण रहेंगी और उन्हीं का स्मरण बाद में भी बना रहेगा। जो प्रिय एवं अनुकूल है, वह सरसरी नजर से देखने पर आँखों के आगे से निकल जाएगा, उसकी विशेषता और स्थिति भी अनुभव में न आ सकेगी। निषेधात्मक चिंतन के कारण जो श्रेष्ठ है, वह भी निकृष्ट प्रतीत होगा। रंगीन काँच का चश्मा पहन लेने पर सभी वस्तुएँ उसी रंग में रँगी हुई दिखाई पड़ती हैं।

यदि अपना चुनाव अशुभ के पक्ष में हो तो असंख्य लोगों में से असंख्य प्रकार की बुराइयाँ दीख पड़ेंगी। अपने साथ किसने, क्या और

कैसा दुर्व्यवहार किया है? यदि इसकी स्मृति दौड़ाई जाए तो प्रतीत होगा कि संसार में दानव स्तर के लोग ही रहते हैं जो अनीतिपूर्ण अनाचार करने में ही निरत रहते हैं। अपने को कब, कितने दुःख भुगतने पड़े और दूसरों में से किसको, कितने दुःख दिए, इसकी गणना करने पर प्रतीत होता है कि यह संसार सचमुच ही नरक है—भवसागर है। यहाँ से जितनी जल्दी, जिस प्रकार भी संभव हो, छुटकारा पाना चाहिए। ऐसी मनःस्थिति में जीवन भार रूप बन जाता है और उसका प्रभाव उद्विग्न-अशांत बने रहने के रूप में ही सामने आता है। यहाँ तक कि इस ऊबड़-खाबड़ दुनिया को बनाने वाले के प्रति भी आक्रोश उत्पन्न होता और भरपेट गाली देने को मन करता है। प्रतिकूलताएँ ही सर्वत्र छाई देखकर मनुष्य नास्तिक स्तर का बन जाता है, उसे कोई भी विश्वसनीय नहीं जँचता, सबके प्रति अविश्वास रहता है।

इसके विपरीत एक दूसरा दृष्टिकोण भी है, उसके अनुरूप अपनी दृष्टि बदल लेने पर समूचा दृश्य ही बदल जाता है और सुंदरता, सज्जनता एवं सदाशयता का माहौल इतना बड़ा दीखता है जिसे देखते हुए लगता है कि भलाई की भी कहीं कमी नहीं। ईश्वर ने ऐसी अद्‌भुत विशेषताओं वाला शरीर दिया, साथ ही जादू की पिटारी जैसा मनःसंस्थान भी। अभिभावकों और कुटुंबियों की दुलार भरी उदारता की एक घटना का स्मरण किया जाए तो प्रतीत होगा कि वे औरों के लिए कैसे भी क्यों न हों, अपने लिए तो देवतातुल्य ही रहे हैं। मित्र, सहपाठियों का स्नेह-सौजन्य, अध्यापकों का ज्ञानदान ऐसे पक्ष हैं, जिनकी उपलब्धि बिना वह स्थिति न आ पाती, जो आज है।

पत्नी का सौजन्य और सेवाभाव यदि उदार दृष्टि से देखा जाए तो प्रतीत होगा कि वह किसी भी प्रकार ऐसा नहीं है, जिसे देवोपम न माना जाए। घर को खुशी और किलकारियों से भर देने वाले बच्चों को, परिवार के अन्यान्य आश्रितजनों को सभी की सद्‌भावना मिलती है। समाज का ऐसा सुगठन है, जिसमें आजीविका के साधन

सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। दैनिक उपयोग की इतनी, इतने प्रकार की वस्तुएँ रहती हैं, जिनके सहारे प्रसन्नता और तृप्ति ही मिलती रहती है।

प्रकृति की ओर दृष्टि उठाकर देखा जाए तो चलते-फिरते खिलौनों जैसे पशु-पक्षी, जीव-जंतु, सरिता-सरोवर, पहाड़-वन, सूर्य-चंद्र और तारागण, बादलों वाला आकाश, वृक्ष-वनस्पतियाँ, सभी कुछ ऐसा है जिसका मनोरम सौंदर्य देखते-देखते मन नहीं भरता।

सत्प्रयोजनों में संलग्न चरित्रवान, उदारमना मनीषियों की खोज की जाए तो उनकी गाथाओं से इतिहास भरा पड़ा मिलेगा। आज भी उनकी कमी नहीं है, संख्या भले ही कम हो और वे निकट नहीं दूर रहते हों, किंतु उनका अस्तित्व इतना अवश्य है कि प्रसन्नता व्यक्त की जा सके और संतोष की साँस ली जा सके।

तथ्य एक ही है कि अपना दृष्टिकोण किस स्तर का है? उद्यान में भौंरे को सुगंध की मस्ती और मधुमक्खियों को शहद की मंजूषाएँ लटकती दीखती हैं, पर गुबरीला कीड़ा पौधों की जड़ों में लगे हुए सड़े गोबर तक जा पहुँचता है और सर्वत्र दुर्गंध ही दुर्गंध पाता है। एक बार गुरु ने दुर्योधन और युधिष्ठिर को एक ही गाँव में भले और बुरे लोगों की सूची बना लेने के लिए भेजा। दुर्योधन को सभी दुष्ट और युधिष्ठिर को सभी सज्जन दीखे। वहाँ थे दोनों ही प्रकार के लोग, पर अपने दृष्टिकोण के अनुरूप उनने उसी नजर से देखा तो उन्हें बहुलता अपनी खोजबीन के अनुरूप ही दिखाई दी।

'संसार में बुराइयाँ न हों सो बात नहीं है, पर वे ऐसी हैं कि उन्हें सुधारने के माध्यम से हम अपना पुरुषार्थ जगा सकें; प्रगतिशीलता का परिचय दे सकें। अनीति न हो तो संघर्ष किससे किया जाए? शौर्य-साहस प्रकट कर सकने का अवसर किस प्रकार आए?

दुष्टता की उपेक्षा की जाए या उसे सहते रहा जाए, बढ़ने दिया जाए-यह कोई नहीं कहता। उन्हें सुधारने-बदलने के लिए भी भरपूर प्रयास करना चाहिए, पर इसमें खीजने की, असंतुलित होने की

आवश्यकता नहीं है। डॉक्टर को सारे दिन उन्हीं के बीच रहना पड़ता है। जिनने असंयम बरतकर अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ लिया है, वे उनके घाव धोते, मरहम लगाते और आवश्यकतानुसार चीर-फाड़ भी करते हैं। वे रोग को मारते और रोगी को बचाते हैं, इस रीति-नीति को अपनाकर कुरूपता को सुंदरता और दुष्टता को सज्जनता में बदला जा सकता है। प्रेम-सौजन्य से काम न चलता हो तो आवश्यकतानुसार दंड नीति भी अपनाई जा सकती है और प्रताड़ना का प्रयोग भी किया जा सकता है, पर इसमें भी अपनी सुधारपरायण सज्जनता की भाव-संवेदना का ही अनुभव प्रयुक्त किया जा सकता है।

फिर अपनी निज की सद्भावना ही अपने लिए कम आनंददायक नहीं होती। वस्तुतः मनुष्य उद्विग्न अपने दृष्टिकोण के कारण ही होता है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, छिद्रान्वेषण, असंतोष, असंयम आदि के कारण ही ऐसी मनःस्थिति बनती है जिसमें खीज, खिन्नता और विद्वेष से मन भरा रहता है। कभी स्वल्प कारण होने पर भी तिल का ताड़ बनता है और चिंता, भय, निराशा, आशंका, अविश्वास आदि मनोविकारों का समूह चक्र दौड़ता है और स्थिति ऐसी पैदा कर देता है, जिसमें चैन से रहना और संपर्क वालों को चैन से रहने देना, बन ही नहीं पड़ता।

स्मरण रखने योग्य यह है कि अंधकार कितना ही विस्तृत क्यों न हो, पर वह प्रकाश से अधिक मात्रा में नहीं हो सकता। संसार में अशुभ कितना ही क्यों न हो, पर वह शुभ से अधिक नहीं है। गंदगी और स्वच्छता का अनुपात लगाया जाए तो स्वच्छता ही अधिक मिलेगी। यदि ऐसा न होता तो आत्मा इस संसार में आने और रहने की इच्छा न करती। कठिनाई अपना दृष्टिकोण उलझा लेने भर की है और वह ऐसा नहीं है जिसे सुधारा-बदला न जा सके।

❑

सफलता आपका जन्मसिद्ध अधिकार है

मनुष्य की असफलता के कारणों में एक कारण अयोग्यता भी है। जिसने किसी काम को करने का सही ढंग सीखने में प्रमाद किया है, उसकी रीति-नीति के संबंध में ज्ञान अर्जित करने का कष्ट नहीं उठाया है, वह उस काम को ठीक से अन्जाम दे सकने की आशा अपने से नहीं रख सकता। यदि वह हठ अथवा लोभ के वशीभूत उस काम को हाथ में ले भी लेगा तो दूसरों के साथ अपनी दृष्टि में भी उपहासास्पद बन जाएगा। किसी काम को सफलतापूर्वक करने के लिए तत्संबंधी योग्यता का होना अत्यंत आवश्यक है।

योग्यता किसी दैवी वरदान के रूप में नहीं मिलती। वह एक ऐसा सुफल है, जिसकी प्राप्ति परिश्रम एवं पुरुषार्थ के पुरस्कारस्वरूप ही होती है। जो आलसी हैं, अकर्मण्य हैं, काम करने में जिनका जी नहीं लगता, परिश्रम के नाम से जिनको पसीना आ जाता है, वे किसी विषय में समुचित योग्यता प्राप्त कर सकेंगे, ऐसी आशा दिवास्वप्न के समान ही मिथ्या सिद्ध होगी। योग्यता की उपलब्धि परिश्रम एवं पुरुषार्थ द्वारा ही संभव है।

किसी विषय में सफलता हस्तगत करने के लिए उस विषय की पर्याप्त योग्यता का होना आवश्यक है और योग्यता की उपलब्धि परिश्रम एवं पुरुषार्थ पर निर्भर है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सफलता का मूलभूत हेतु परिश्रम ही है।

जिनको संसार में कुछ सराहनीय दिखाने की इच्छा है अथवा जो चाहते हैं कि सफलताएँ उनके जीवन का शृंगार करें, उन्हें चाहिए कि वे पूरे तन, मन और पूरी सचाई के साथ अपने में परिश्रम तथा पुरुषार्थ का स्वभाव विकसित करें। एक बार ध्येयपूर्वक परिश्रमी स्वभाव का विकास कर लेने पर फिर वह ऐसा सहज स्वभाव बन जाता है कि किसी के लिए अकर्मण्य रहकर कुछ क्षण बिता सकना ही पहाड़ हो जाता है।

कर्मण्य स्वभाव वाला व्यक्ति इतना कर्मशील बन जाता है कि यदि विवशतावश उसे एक–आध दिन निकम्मा होकर बैठना पड़े तो उसके लिए वह समय कारावास की दुःखदायी स्थिति से कम नहीं बैठ सकता। परिश्रमी स्वभाव वाला व्यक्ति एक क्षण के लिए भी बेकार नहीं बैठ सकता। उसे काम करने की आवश्यकता उसी प्रकार अनुभव होती है जिस प्रकार भूख लगने पर खाने की आवश्यकता। भूख लगने पर जब तक कुछ खा न लिया जाए, तब तक चैन नहीं पड़ता, उसी प्रकार परिश्रमी स्वभाव वाला व्यक्ति काम के अभाव में तब तक बेचैन बना रहता है, जब तक कि उसे मनमाना काम करने के लिए नहीं मिल जाता। जिसने अपने स्वभाव को इस सीमा तक परिश्रमी एवं पुरुषार्थी बना लिया है, मानना होगा कि उसने अपने भाग्य का निर्माण कर लिया है और सफलता की जयमाल लेकर विचरण करने वाले देवदूतों को अपनी ओर आकर्षित करने की योग्यता उपलब्ध कर ली है।

जिन सुविधाजनक परिस्थितियों को प्रारब्ध की संज्ञा दी जाती है, जिन साधनों और उपादानों को मानव जीवन की सफलता का सहायक माना जाता है और जो सौभाग्य फलों के रूप में जन–जन को स्पृहणीय होते हैं, वे सब परिश्रम एवं पुरुषार्थ के पुरस्कार के सिवाय और कुछ नहीं होते। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है–इस सूक्ति–वाक्य को कर्मठ व्यक्तियों ने पुरुषार्थ द्वारा, असंभव को संभव सिद्ध करके, विचारकों को संसार के सम्मुख एक सिद्ध मंत्र के रूप में प्रस्तुत करने के लिए विवश कर दिया।

सुख–दुःख, हानि–लाभ, सफलता–असफलता दैवाधीन हैं, इनमें मनुष्य की गति नहीं है। इस प्रकार की भावना आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में भले ही अर्थ रखती हो किंतु भौतिक धरातल पर इसका अधिक महत्त्व नहीं माना जा सकता। यदि इस दार्शनिक भावना को देश, काल और परिस्थितियों का विचार किए बिना सामान्य जीवनक्रम में प्रवृत्त कर दिया जाए तो निश्चय ही संसार का विकास अवरुद्ध हो जाए और इस कर्मलोक में अकर्मण्यता का साम्राज्य स्थापित होते देर न लगे।

लोग असमय में अकारण ही उक्त भावना का बहाना लेकर कंधा डाल दें और तब सारे संसार का यह सक्रिय स्वरूप वैसे ही समाप्त हो जाए, जैसे पक्षाघात का आक्रमण होने पर चलते-फिरते मनुष्य की गति स्थगित हो जाती है।

कभी-कभी देखा जाता है कि प्रयत्न करने पर भी कुछ लोग वांछित सफलता प्राप्त नहीं कर पाते, तब दृष्टिकोण में इस भ्रम की संभावना हो उठती है कि प्रयत्न और पुरुषार्थ व्यर्थ हैं, मनुष्य का भाग्य ही प्रबल होता है। किंतु यह भ्रम सर्वथा भ्रम ही है, सत्य का इससे दूर का भी संबंध नहीं होता। ऐसे प्रयत्नशील व्यक्ति की असफलता को लेकर भाग्यवाद में आस्था की स्थापना करने लगना मानसिक निर्बलता का लक्षण है। निश्चय ही उस असफल व्यक्ति के प्रयत्न में कुछ न कुछ खोट अथवा कमी रही होगी जिससे कि उसे उस समय असफलता का मुँह देखना पड़ा। यदि प्रयत्न पूरा और सावधानी के साथ किया जाए तो किसी के सम्मुख असफलता के आने का अवसर ही शेष नहीं रह जाता। पूरा और सुचारु प्रयत्न सफलता की एक ऐसी गारंटी है जो कभी असिद्ध नहीं हो सकती।

किसी एक प्रयत्न से कोई निश्चित सफलता मिल ही जाए, यह आवश्यक नहीं। सफलता के लिए कभी-कभी प्रयत्नों की परंपरा लगा देनी होती है। परिश्रम एवं पुरुषार्थ के रूप में उसका उतना मूल्य चुका ही देना होता है, जितना चुकाना उसके लिए अनिवार्य है। एक बार असफलता का सामना हो जाने पर किसी को असफल मान लेना उसके साथ अन्याय करने के समान है। संसार में लिंकन जैसे हजारों व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने सैकड़ों बार असफल होकर भी, अंत में अभीष्ट सफलता का वरण कर ही लिया। सच्चा पुरुषार्थी वास्तव में वही है जो बार-बार असफलता को देखकर भी अपने प्रयत्न में शिथिलता न आने दे और हर असफलता के बाद एक नए उत्साह से सफलता के लिए निरंतर उद्योग करता रहे। जो पत्थर एक आघात से नहीं टूटता उसे बार-बार के आघात से ही तोड़ा जा सकता है।

असफलता को अंगीकार करने का अर्थ है-निराशा को निमंत्रण

देना। निराशा के दुष्परिणामों के विषय में अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। निराशा की भावना को यदि नागपाश की भाँति कह दिया जाए तो कुछ अनुचित न होगा। निराशा मनुष्य की क्रियाशीलता पर सर्प की भाँति लिपटकर न केवल उसकी गति ही अवरुद्ध कर देती है, प्रत्युत अपने विषैले प्रभाव से उसके जीवनतत्त्व को भी नष्ट कर देती है।

यह अधिक अस्वाभाविक नहीं है कि असफलता की स्थिति में कभी-कभी निराशा मनुष्य के विचारों पर अपनी काली छाया डालने का साहस कर ही जाती है किंतु उस छाया को देर तक ठहरने न देना चाहिए। यदि यह गलती की जाएगी तो सच मानिए आपके वर्तमान पर ही नहीं, भविष्य पर भी उसका दूरगामी कुप्रभाव पड़े बिना रह न सकेगा। वे सारे स्वप्न, सारी स्वर्ण-कल्पनाएँ, जिनको मूर्तिमान करने की आकांक्षा लेकर आपने कर्मक्षेत्र में कदम बढ़ाया है, सहसा धूमिल पड़ जाएँगी। आपका आत्मविश्वास, उत्साह और साहस धीरे-धीरे साथ छोड़ने लगेगा, विचारों के माध्यम से जीवन क्षितिज पर अंधकार घनीभूत हो उठेगा और तब कुंठा एवं कायरता के सिवाय आपके पास कुछ भी तो शेष न बचेगा। इसीलिए बुद्धिमानी इसी में है कि असफलता के साथ निराशा को जोड़कर ऐसी हानि न की जाए जो कभी भी पूरी न हो सके।

इस अनुभव सिद्ध सत्य को स्वीकार कर लेने में सब प्रकार से हित ही हित है कि निरंतर काम में जुटा रहना निराशा का सर्वश्रेष्ठ और सृजनात्मक उपचार है। काम में संलग्न रहने से मन की सारी वृत्तियाँ एकाग्रता के साथ उस काम की ओर ही प्रवृत्त रहती हैं। विचारों का प्रवाह कार्य के साथ चलता रहता है। इस संलग्नता के कारण विचारों में ऐसा कोई स्थान रिक्त नहीं रहता, जहाँ आकर निराशा अपना अधिकार जमा सके। जहाँ अकर्मण्यता की स्थिति में निराशा के विचार मस्तिष्क को घेरने लगते हैं, वहाँ इसके विपरीत सक्रियता की स्थिति में सृजनता के कारण आशापूर्ण विचारों का उदय होता चलता है।

जीवन में सफलता की आशा रखने वालों को चाहिए कि सामयिक असफलता को चुनौती की भाँति स्वीकार करें और अपनी सृजनशक्ति के बल पर असफलता की पोषक निराशा को पास न फटकने दें। जिसने निराशा से दूर रहकर असफलता को सफलता में बदल देने का दृढ़ निश्चय किया होता है, उसने मानो दूर तक अपनी मंज़िल का मार्ग निरापद बना लिया होता है।

सफलता के मार्ग में कठिनाइयों का आना असंभव नहीं, उनका आना स्वाभाविक है। जिस मार्ग में कठिनाई नहीं, जिस पर विरोध अथवा अवरोध की संभावना नहीं, वह मार्ग किसी महान ध्येय की ओर जा रहा है—ऐसा मान लेने में जल्दी नहीं करनी चाहिए। आज तक के प्रत्येक महापुरुष का जीवन बतलाता है कि महानता की ओर जाने वाला आज तक ऐसा कोई मार्ग अन्वेषण नहीं किया जा सका जिस पर कठिनाइयों का सामना न करना पड़े। बीच-बीच में आने वाली कठिनाइयाँ इस बात की साक्षी हैं कि अमुक मार्ग किसी असामान्य ध्येय की ओर जाता है।

अपने ध्येय मार्ग पर विघ्न-बाधाओं को देखकर अनेक लोग हतोत्साहित हो उठते हैं। ऐसे व्यक्तियों को यह मान लेने में संकोच न करना चाहिए कि किसी महान सफलता को वरण करने की उनकी आकांक्षा परिपक्व नहीं है। इस प्रकार की आकांक्षा जिनके हृदय में लगन बनकर लगी होती है, वे हँसते-खेलते विघ्न-बाधाओं से टक्कर लेते हुए साहसपूर्वक अपने ध्येय मार्ग पर बढ़ते चले जाते हैं। मार्ग की कठिनाइयों से टकराने में जिस आत्मिक आनंद की उपलब्धि होती है, उसे पाने के अधिकारी ऐसे पुरुषार्थी पुरुषों के सिवाय और कौन हो सकता है?

ध्येय मार्ग का कोई भी सच्चा पथिक इस सत्य के समर्थन में उत्साह प्रकट किए बिना नहीं रह सकता कि मार्ग में यदि कठिनाइयों से टकराने का अवसर न मिले तो असहनीय नीरसता का समावेश हो जाए और वह नीरसता लक्ष्य पर पहुँचकर दूर नहीं हो सकती। उस नीरसता के साथ मंज़िल पर पहुँचने पर कौन सी नवीनता, कौन सा संतोष और कौन सा हर्ष उपलब्ध हो सकता है? यह मार्ग की बाधाएँ दूर करने में किए गए संघर्ष की ही विशेषता है जो मंज़िल पर पहुँचकर

विश्राम, संतोष और आनंद के रूप में अनुभव होती है। प्रगति का वास्तविक आनंद इसी में है कि कठिनाइयों का संयोग आता रहे और उन पर विजय प्राप्त की जाती रहे। हलचल के बिना जीवन सूना और नीरस हो जाता है।

कठिनाइयों से भय मानना, अंतर में छिपी कायरता का द्योतक है। अपनी इस कायरता के कारण ही मार्ग में आई कठिनाई पहाड़ के समान दुरूह मालूम होती है। किंतु जब उस कठिनाई को दूर करने के लिए साहसपूर्वक जुट पड़ा जाता है तो यह विदित होते देर नहीं लगती कि जिस कठिनाई को हम पर्वत के समान दुर्गम समझ रहे थे, वह उस बादल के समान हीन अस्तित्व थी जो थोड़ी हवा लगने पर टुकड़े-टुकड़े होकर छितरा जाता है।

सफलता को आसान समझकर उसकी कामना करने वाले व्यक्ति प्रौढ़ बुद्धि के नहीं माने जा सकते। सफलता की उपलब्धि सरलता से नहीं, कठोर संघर्ष से संभव होती है। अध्ययन, अध्यवसाय एवं अनुभव की साधना किए बिना अभीष्ट सफलता को पा सकने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अपने को योग्य बनाकर पूरे संकल्प के साथ लक्ष्य की ओर बढ़ना होगा। मार्ग में आने वाली बाधाओं का, यह मानकर स्वागत करना होगा कि वे हमारे साहस, निश्चय और संकल्प की परीक्षा लेने आई हैं। कठिनाइयों को देखकर भयभीत होने के स्थान पर उन्हें दूर करने के लिए जी जान से जुट जाना होगा। इस प्रकार पूरे समारोह और साहस के साथ लक्ष्य की ओर अभियान करने पर सफलता की आशा की जा सकती है। इसमें संदेह नहीं कि ऐसा अदम्य उद्योग और उत्साह की क्षमता प्रकट करने वाले पुरुषार्थी पुरुषों के गले में जयमाल पड़ती ही है और वे समाज द्वारा अभिवंदित होकर उन्नति के उच्च सिंहासन पर अभिषेक के अधिकारी बनते हैं।

सफलता की सिद्धि मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। जो व्यक्ति अपने इस अधिकार की उपेक्षा करके यथा-तथा जी लेने में ही संतोष मानते हैं, वे इस महामूल्य मानव जीवन का अवमूल्यन कर एक ऐसे सुअवसर को खो देते हैं, जिसका दोबारा मिल सकना संदिग्ध है।

मुद्रक-युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)